Chapter चौंतीस

नन्द महाराज की रक्षा तथा शंखचूड़ का वध

इस अध्याय में बतलाया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने किस तरह अपने पिता नन्द को सर्प के चंगुल से छुड़ाया और किस तरह सुदर्शन नामक एक विद्याधर का आंगिरस मुनियों के श्राप से उद्धार किया

एक दिन नन्द महाराज अन्य ग्वालों के साथ अपने अपने परिवारों को बैलगाड़ियों में चढ़ाकर शिवजी की पूजा करने अम्बिका वन गये। सरस्वती नदी में स्नान करने तथा विष्णु के एक रूप भगवान् सदाशिव की पूजा करने के बाद सबों ने उसी जंगल में रात्रि बिताने का निश्चय किया। जब वे सो रहे थे तो एक भूखा साँप आया और नन्द महाराज को निगलने लगा। नन्द महाराज ने भयभीत होकर आर्त स्वर में पुकारा, ''हे कृष्ण! हे मेरे बेटे! मुझ शरणागत को बचाओ।'' तुरन्त ही सारे ग्वाले जाग गये और लुकाठों से उस साँप को मारने लगे किन्तु वह साँप नन्द को छोड़ने का नाम ही नहीं ले रहा था। तब भगवान् कृष्ण आये और उन्होंने उस सर्प को अपने चरणकमलों से छुआ। वह सर्प तुरन्त ही अपने सर्प शरीर से मुक्त हो गया और अपने मौलिक देव रूप में प्रकट हुआ। उसने उन्हें अपने पूर्वजन्म की कथा कह सुनाई और यह बतलाया कि किस तरह मुनियों की टोली ने उसे श्राप दिया था। तत्पश्चात् उसने श्रीकृष्ण के चरणकमलों की वन्दना की और भगवान् के आदेश से अपने धाम लौट गया।

बाद में, दोलपूर्णिमा उत्सव के अवसर पर श्रीकृष्ण तथा बलराम ने व्रजयुवतियों के साथ वन-विहार किया। कृष्ण तथा बलराम की सखियों ने मिलकर उनके दिव्य गुणों का गान किया। जब दोनों

भाई गायन में लीन होकर झूमने लगे तो कुवेर का एक शंखचूड़ नामक नौकर साहस करके वहाँ आया और गोपियों का हरण करने लगा। तब तरुणियों ने चिल्लाना शुरू किया, ''हे कृष्ण, हमें बचाओ।'' अत: कृष्ण तथा राम शंखचूड़ का पीछा करने लगे। कृष्ण ने डपटते हुए गोपियों को कहा, ''डरो मत।'' इन दोनों के भय से शंखचूड़ गोपियों को छोड़कर अपनी जान लेकर भागा। कृष्ण ने उसका पीछा किया और तेजी से निकट पहुँचकर अपनी मुट्ठी के प्रहार से रत्न समेत उसके सिर को अलग कर दिया। तत्पश्चात् वे उस रत्न को ले आये और इसे भगवान् बलदेव को भेंट कर दिया।

श्रीशुक उवाच
एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुका: ।
अनोभिरनडुद्युक्तै: प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एकदा—एक बार; देव—देवता अर्थात् शिवजी (की पूजा करने के लिए); यत्रायाम्—यात्रा पर; गोपाला:—सारे ग्वाले; जात-कौतुका:—उत्सुक; अनोभि:—गाड़ियों समेत; अनडुत्—बैलों से; युक्तै:—जुती; प्रययु:—गये; ते—वे; अम्बिका-वनम्—अम्बिका वन में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : एक दिन भगवान् शिव की पूजा हेतु यात्रा करने के उत्सुक ग्वाले बैलगाड़ियों द्वारा अम्बिका वन गये।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार *एकदा* शब्द शिवरात्रि का सूचक है। वे यह भी उल्लेख करते हैं कि अम्बिका वन गुजरात प्रान्त में सिद्धपुर शहर के निकट है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यह बतलाते हैं कि ग्वाले फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष चतुर्दशी के दिन यात्रा पर रवाना हुए। वे प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि अम्बिका वन मथुरा से उत्तर पश्चिम दिशा में सरस्वती नदी के किनारे स्थित है। अम्बिका वन इसलिए विख्यात है क्योंकि इसमें श्री शिव तथा उनकी पत्नी देवी उमा के अर्चाविग्रह हैं।

तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ।
आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; स्नात्वा—स्नान करके; सरस्वत्याम्—सरस्वती नदी में; देवम्—देवता; पशु-पतिम्—शिवजी को; विभुम्—शक्तिशाली; आनर्चु:—उन्होंने पूजा की; अर्हणै:—साज-सामग्री समेत; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; देवीम्—देवी; च—तथा; नृ-पते—हे राजा; अम्बिकाम्—अम्बिका को।

हे राजन्, वहाँ पहुँचने के बाद उन्होंने सरस्वती नदी में स्नान किया और तब विविध पूजा-सामग्री से शक्तिशाली शिवजी तथा उनकी पत्नी देवी अम्बिका की भक्तिपूर्वक पूजा की।

गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमाहृताः ।
ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

गावः—गौवें; हिरण्यम्—स्वर्ण; वासांसि—वस्त्र; मधु—मीठा; मधु—शहद से मिश्रित; अन्नम्—अन्न; आहृताः—आदरपूर्वक; ब्राह्मणेभ्यः—ब्राह्मणों को; ददुः—दिया; सर्वे—सभी; देवः—स्वामी; नः—हम पर; प्रीयताम्—प्रसन्न हों; इति—इस प्रकार प्रार्थना करते हुए।

ग्वालों ने ब्राह्मणों को गौवें, स्वर्ण, वस्त्र तथा शहदमिश्रित पक्वान्न की भेंटें दान में दीं। तत्पश्चात् उन्होंने प्रार्थना की, ''हे प्रभु, हम पर आप प्रसन्न हों।''

ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य यतव्रताः ।
रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

ऊषुः—रुके रहे; सरस्वती-तीरे—सरस्वती के तट पर; जलम्—जल को; प्राश्य—खाकर (पीकर); यत-व्रताः—कठिन व्रत करते हुए; रजनीम्—रात को; ताम्—उस; महा-भागाः—भाग्यशाली लोग; नन्द-सुनन्दक-आदयः—नन्द, सुनन्द इत्यादि।

नन्द, सुनन्द तथा अन्य अत्यन्त भाग्यशाली ग्वालों ने वह रात सरस्वती के तट पर संयम से अपने अपने व्रत रखते हुए बिताई। उन्होंने केवल जल ग्रहण किया और उपवास रखा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि सुनन्द नन्द महाराज के छोटे भाई थे।

कश्चिन्महानहिस्तस्मिन्विपिनेऽतिबुभुक्षितः ।
यदृच्छयागतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

कश्चित्—किसी; महान्—बड़ा; अहिः—सर्प ने; तस्मिन्—उस; विपिने—जंगल के क्षेत्र में; अति-बुभुक्षितः—अत्यन्त भूखा; यदृच्छया—अकस्मात्; आगतः—आया; नन्दम्—नन्द महाराज को; शयानम्—सोते हुए; उर-गः—पेट के बल सरकता; अग्रसीत्—निगल लिया।

रात में एक विशाल एवं अत्यन्त भूखा सर्प उस जंगल में प्रकट हुआ। वह सोये हुए नन्द महाराज के निकट अपने पेट के बल सरकता हुआ गया और उन्हें निगलने लगा।

स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम् ।
सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, नन्द महाराज; चुक्रोश—चिल्लाया; अहिना—साँप के द्वारा; ग्रस्तः—पकड़ा हुआ; कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; महान्—विशाल; अयम्—यह; सर्पः—सर्प; माम्—मुझको; ग्रसते—निगले जा रहा है; तात—मेरे बेटे; प्रपन्नम्—मुझ शरणागत का; परिमोचय—उद्धार करो।

साँप के चंगुल में फँसे नन्द महाराज चिल्लाये, "कृष्ण! बेटे कृष्ण!, यह विशाल सर्प मुझे निगले जा रहा है। मैं तो तुम्हारा शरणागत हूँ। मुझे बचाओ।"

तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ।
ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसकी; च—तथा; आक्रन्दितम्—चिल्लाहट; श्रुत्वा—सुनकर; गोपालाः—ग्वाले; सहसा—एकाएक; उत्थिताः—उठकर; ग्रस्तम्—पकड़ा हुआ; च—तथा; दृष्ट्वा—देखकर; विभ्रान्ताः—विचलित; सर्पम्—साँप को; विव्यधुः—पीटा; उल्मुकैः—जलती मशालों, या लुकाठों से।

जब ग्वालों ने नन्द की चीखें सुनीं तो वे तुरन्त उठ गये और उन्होंने देखा कि नन्द को तो सर्प निगले जा रहा है। अत्यन्त विचलित होकर उन्होंने जलती मशालों से उस सर्प को पीटा।

अलातैर्दह्यमानोऽपि नामुञ्चत्तमुरङ्गमः ।
तमस्पृशत्पदाभ्येत्य भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

अलातैः—लुकाठों से; दह्यमानः—जलाये जाने पर; अपि—भी; न अमुञ्चत्—नहीं छोड़ा; तम्—उसको; उरङ्गमः—सर्प ने; तम्—उस साँप को; अस्पृशत्—छुआ; पदा—पाँव से; अभ्येत्य—आकर; भगवान्—भगवान् ने; सात्वताम्—भक्तों के; पतिः—स्वामी।

लुकाठों से जलाये जाने पर भी उस साँप ने नन्द महाराज को नहीं छोड़ा। तब भक्तों के स्वामी भगवान् कृष्ण उस स्थान पर आये और उन्होंने उस साँप को अपने पाँव से छुआ।

स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ।
भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निस्सन्देह; भगवतः—भगवान् के; श्री-मत्—दैवी; पाद—पाँव के; स्पर्श—स्पर्श से; हत—विनष्ट हुए; अशुभः—सारे अशुभ; भेजे—धारण किया; सर्प-वपुः—साँप का शरीर; हित्वा—त्यागकर; रूपम्—रूप; विद्याधर—विद्याधरों द्वारा; अर्चितम्—पूजित।

भगवान् के दिव्य चरण का स्पर्श पाते ही सर्प के सारे पाप विनष्ट हो गये और उसने अपना सर्प-शरीर त्याग दिया। वह पूज्य विद्याधर के रूप में प्रकट हुआ।

तात्पर्य : *रूपं विद्याधरार्चितम्* शब्द बतलाते हैं कि अभी तक जो सर्प था वह अब विद्याधर नामक

देवताओं में पूजित सुन्दर रूप में प्रकट हुआ। दूसरे शब्दों में, वह विद्याधरों के नायक के रूप में प्रकट हुआ।

तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समवस्थितम् ।
दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तम्—उससे; अपृच्छत्—पूछा; हृषीकेशः—भगवान् हृषीकेश ने; प्रणतम्—नमस्कार करते हुए; समवस्थितम्—उनके समक्ष खड़ा; दीप्यमानेन—देदीप्यमान; वपुषा—शरीर से; पुरुषम्—पुरुष को; हेम—सुनहरे; मालिनम्—मालाएँ पहने।

तब भगवान् हृषीकेश ने इस व्यक्ति से जो देदीप्यमान शरीर से युक्त उनके समक्ष सिर झुकाये, सुनहरी मालाओं से सज्जित खड़ा था, पूछा।

तात्पर्य : यह देवता बोलने वाला था और भगवान् सबों का ध्यान उसके शब्दों की ओर आकृष्ट करना चाहते थे। इसीलिए भगवान् ने स्वयं उस पूज्य विद्याधर से पूछा जो उनके समक्ष अपना सिर झुकाये खड़ा था।

को भवान्परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ।
कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; भवान्—आप; परया—महान; लक्ष्म्या—सौन्दर्य से युक्त; रोचते—चमक रहे हो; अद्भुत—अनोखा; दर्शनः—देखने में; कथम्—क्यों; युगुप्सिताम्—भयानक; एताम्—यह; गतिम्—लक्ष्य; वा—तथा; प्रापितः—धारण करना पड़ा; अवशः—अपने वश से बाहर।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] महाशय, आप तो अत्यधिक सौन्दर्य से चमत्कृत होने से इतने अद्भुत लग रहे हैं। आप कौन हैं? और आपको किसने सर्प का यह भयानक शरीर धारण करने के लिए बाध्य किया?

सर्प उवाच

अहं विद्याधरः कश्चित्सुदर्शन इति श्रुतः ।
श्रिया स्वरूपसम्पत्त्या विमानेनाचरन्दिशः ॥ १२ ॥
ऋषीन्विरूपाङ्गिरसः प्राहसं रूपदर्पितः ।
तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सर्पः उवाच—सर्प ने कहा; अहम्—मैं; विद्याधरः—विद्याधर; कश्चित्—कोई; सुदर्शनः—सुदर्शन; इति—इस प्रकार; श्रुतः—विख्यात; श्रिया—ऐश्वर्य से; स्वरूप—अपने स्वरूप का; सम्पत्त्या—धन से; विमानेन—अपने विमान में; आचरन्—घूमते हुए; दिशः—दिशाएँ; ऋषीन्—ऋषिगण; विरूप—कुरूप; आङ्गिरसः—अङ्गिरा मुनि की शिष्य परम्परा के; प्राहसम्—मैंने हँसी उड़ाई; रूप—सौन्दर्य के कारण; दर्पितः—अत्यधिक गर्वित; तैः—उनके कारण; इमाम्—यह; प्रापितः—धारण करना पड़ा; योनिम्—जन्म; प्रलब्धैः—जिनका मजाक उड़ा था; स्वेन—अपने ही; पाप्मना—पापों के कारण।

सर्प ने उत्तर दिया: मैं सुदर्शन नामक विख्यात विद्याधर हूँ। मैं अत्यन्त सम्पत्तिवान तथा सुन्दर था और अपने विमान में चढ़कर सभी दिशाओं में मुक्त विचरण करता था। एक बार मैंने अंगिरा मुनि की परम्परा के कुछ ऋषियों को देखा। अपने सौन्दर्य से गर्वित मैंने उनका मजाक उड़ाया और मेरे पाप के कारण उन्होंने मुझे निम्न योनि धारण करने के लिए बाध्य कर दिया।

शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ।
यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥ १४॥

शब्दार्थ

शापः—शाप; मे—मेरे; अनुग्रहाय—वर के लिए; एव—निश्चय ही; कृतः—किया गया; तैः—उनके द्वारा; करुण-आत्मभिः—स्वभाव से दयालु; यत्—चूँकि; अहम्—मैं; लोक—सारे लोकों के; गुरुणा—गुरु द्वारा; पदा—पाँव से; स्पृष्टः—स्पर्श किया; हत—नष्ट; अशुभः—सारे अशुभ।

वास्तव में मेरे लाभ के लिए ही उन दयालु ऋषियों ने मुझे शाप दिया क्योंकि अब मैं समस्त लोकों के परम दिव्य गुरु के पाँव द्वारा स्पर्श किया जा चुका हूँ और इस तरह सारे अशुभों से मुक्त हो चुका हूँ।

तं त्वाहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम् ।
आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥ १५॥

शब्दार्थ

तम्—वही पुरुष; त्वा—तुम; अहम्—मैं; भव—संसार का; भीतानाम्—डरे हुओं के लिए; प्रपन्नानाम्—शरणागतों के; भय—भय के; अपहम्—भगाने वाले; आपृच्छे—आपकी अनुमति चाहता हूँ; शाप—शाप से; निर्मुक्तः—मुक्त; पाद-स्पर्शात्—आपके पाँव के स्पर्श से; अमीव—सारे दुखों के; हन्—नष्ट करने वाले।

हे प्रभु, आप उन समस्त लोगों के सारे भय को नाश करने वाले हैं, जो इस भौतिक संसार से डर कर आपकी शरण ग्रहण करते हैं। अब मैं आपके चरणस्पर्श से ऋषियों के शाप से मुक्त हो गया हूँ। हे दुखभंजन, अब मुझे अपने लोक वापस जाने की अनुमति दें।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार *आपृच्छे* शब्द सूचित करता है कि सुदर्शन ने विनीत होकर भगवान् से अपने धाम वापस जाने की अनुमति देने की प्रार्थना की जहाँ वह निश्चित रूप से शुद्ध मन से शान्तिपूर्वक अपने कर्तव्य का पुनः निर्वाह कर सके।

प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन्महापुरुष सत्पते ।
अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

प्रपन्नः—शरणागत; अस्मि—हूँ; महा-योगिन्—हे योगियों में महान; महा-पुरुष—हे महापुरुष; सत्-पते—हे भक्तों के स्वामी; अनुजानीहि—आज्ञा दें; माम्—मुझको; देव—हे ईश्वर; सर्व—सभी; लोक—लोकों के; ईश्वर—नियन्ताओं के; ईश्वर—हे परम नियन्ता।

हे योगेश्वर, हे महापुरुष, हे भक्तों के स्वामी, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। हे परमेश्वर, हे ब्रह्माण्ड के ईश्वरों के ईश्वर, आप जैसा चाहें वैसी मुझे आज्ञा दें।

ब्रह्मदण्डाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युत दर्शनात् ।
यन्नाम गृह्णन्नखिलान्श्रोतृनात्मानमेव च ।
सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म—ब्राह्मणों के; दण्डात्—दण्ड से; विमुक्तः—मुक्त; अहम्—मैं; सद्यः—तुरन्त; ते—आप; अच्युत—हे अच्युत भगवान्; दर्शनात्—दर्शन से; यत्—जिसके; नाम—नाम; गृह्णन्—कीर्तन करने; अखिलान्—समस्त; श्रोतॄन्—श्रोताओं; आत्मानम्—स्वयं; एव—निस्सन्देह; च—भी; सद्यः—तुरन्त; पुनाति—पवित्र कर देता है; किम् भूयः—तो फिर और अधिक क्या; तस्य—उसका; स्पृष्टः—स्पर्श किया गया; पदा—पाँव से; हि—निस्सन्देह; ते—आपके।

हे अच्युत, मैं आपके दर्शन मात्र से ब्राह्मणों के दण्ड से तुरन्त मुक्त हो गया। जो कोई आपके नाम का कीर्तन करता है, वह अपने साथ-साथ अपने श्रोताओं को भी पवित्र बना देता है। तो फिर आपके चरणकमल का स्पर्श न जाने कितना लाभप्रद होगा?

इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवन्द्य च ।
सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नन्दश्च मोचितः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; अनुज्ञाप्य—अनुमति लेकर; दाशार्हम्—कृष्ण से; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; अभिवन्द्य—नमस्कार करके; च—तथा; सुदर्शनः—सुदर्शन; दिवम्—स्वर्ग को; यातः—चला गया; कृच्छ्रात्—अपने संकट से; नन्दः—नन्द महाराज; च—भी; मोचितः—छूट गये।

इस प्रकार भगवान् कृष्ण की अनुमति पाकर सुदर्शन ने उनकी परिक्रमा की, उन्हें झुककर नमस्कार किया और तब वह स्वर्ग के अपने लोक लौट गया। इस तरह नन्द महाराज संकट से उबर आये।

निशाम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं

व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः ।
समाप्य तस्मिन्नियमं पुनर्व्रजं
णृपाययुस्तत्कथयन्त आदृताः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

निशाम्य—देखकर; कृष्णस्य—कृष्ण का; तत्—वह; आत्म—अपना; वैभवम्—शक्ति का प्रदर्शन; व्रज-ओकसः—व्रजवासी; विस्मित—चकित; चेतसः—अपने मन में; ततः—तब; समाप्य—समाप्त करके; तस्मिन्—उस स्थान पर; नियमम्—अपने व्रत; पुनः—फिर; व्रजम्—ग्वालों के गाँव में; नृप—हे राजा; आययुः—लौट आये; तत्—वह प्रदर्शन; कथयन्तः—बयान करते; आदृताः—आदरपूर्वक।

कृष्ण की असीम शक्ति देखकर व्रजवासी चकित रह गये। हे राजन्, तब उन्होंने भगवान् शिव की पूजा सम्पन्न की और रास्ते में कृष्ण के शक्तिशाली कार्यों का आदरपूर्वक वर्णन करते हुए वे सभी व्रज लौट आये।

कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः ।
विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

कदाचित्—एक समय; अथ—तब; गोविन्दः—भगवान् कृष्ण; रामः—बलराम; च—तथा; अद्भुत—अद्भुत; विक्रमः—कार्य; विजह्रतुः—दोनों ने क्रीड़ा की; वने—वन में; रात्र्याम्—रात्रि के समय; मध्य-गौ—बीच में; व्रज-योषिताम्—ग्वालों की स्त्रियों के।

एक बार अद्भुत कौशल दिखलाने वाले भगवान् गोविन्द तथा राम रात्रि के समय व्रज की युवतियों के साथ जंगल में क्रीड़ा कर रहे थे।

तात्पर्य : इस श्लोक में एक नवीन लीला का वर्णन आरम्भ हुआ है। आचार्यों के अनुसार यहाँ पर जिस अवसर का उल्लेख है, वह होलि का पूर्णिमा का दिन था जिसे गौरपूर्णिमा भी कहा जाता है।

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः ।
स्वलङ्कृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विनौ विरजोऽम्बरौ ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

उपगीयमानौ—उनकी महिमा का गायन करते; ललितम्—मनोहर; स्त्री-जनैः—स्त्रियों के द्वारा; बद्ध—बँधा; सौहृदैः—उनके प्रति स्नेह से; सु-अलङ्कृत—अत्यधिक सजी हुई; अनुलिप्त—(चन्दन) लेप किये; अङ्गौ—अंगों वाली; स्रक्-विनौ—फूलों की माला पहने; विरजः—धूल से रहित, निर्मल; अम्बरौ—वस्त्र धारण किये।

कृष्ण तथा बलराम फूलों की माला तथा स्वच्छ वस्त्र धारण किये हुए थे और उनके अंग प्रत्यंग उत्तम विधि से सजाये तथा लेपित किये गये थे। उनके स्नेह में बँधी हुई स्त्रियों ने उनकी महिमा का मनोहर ढंग से गायन किया।

निशामुखं मानयन्तावुदितोडुपतारकम् ।
मल्लिकागन्धमत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

निशा-मुखम्—रात्रि का शुभारम्भ; मानयन्तौ—दोनों ने सम्मान करते हुए; उदित—उदित होकर; उडुप—चन्द्रमा; तारकम्—तथा तारे; मल्लिका—चमेली के फूलों की; गन्ध—सुगन्ध से; मत्त—उन्मत्त; अलि—भौंरों के द्वारा; जुष्टम्—पसंद किये गये; कुमुद—कमलों की; वायुना—मन्द वायु से।

उन दोनों ने रात्रि आगमन की प्रशंसा की जिसका संकेत चन्द्रमा तथा तारों के उदित होने, कमल की गंध से युक्त मन्द वायु तथा चमेली के फूलों की सुगन्ध से मत्त भौंरों से हो रहा था।

जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमङ्गलम् ।
तौ कल्पयन्तौ युगपत्स्वरमण्डलमूर्च्छितम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

जगतुः—गाया; सर्व-भूतानाम्—समस्त प्राणियों के; मनः—मन; श्रवण—तथा कानों के लिए; मङ्गलम्—सुख; तौ—दोनों जन; कल्पयन्तौ—उत्पन्न करते हुए; युगपत्—एकसाथ; स्वर—तान; मण्डल—समूह से; मूर्च्छितम्—वर्धित।

कृष्ण तथा बलराम ने एकसाथ आरोह अवरोह की सभी ध्वनियाँ से युक्त राग अलापा। उनके गायन से सारे जीवों के कानों तथा मन को सुख प्राप्त हुआ।

गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन्नृप ।
स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियाँ; तत्—उनके; गीतम्—गायन को; आकर्ण्य—सुनकर; मूर्च्छिताः—मूर्च्छित हो गईं; न अविदन्—ज्ञान न रहा; नृप—हे राजन्; स्रंसत्—खिसकते हुए; दुकूलम्—वस्त्र; आत्मानम्—अपने आप; स्रस्त—बिखर गये; केश—बाल; स्रजम्—मालाएँ; ततः—उससे (खिसककर)।

जब गोपियों ने वह गायन सुना तो वे सम्मोहित हो गईं। हे राजन्, वे अपने आपको भूल गईं और उन्होंने यह भी नहीं जाना कि उनके सुन्दर वस्त्र शिथिल हो रहे हैं तथा उनके बाल एवं मालाएँ बिखर रही हैं।

एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः सम्प्रमत्तवत् ।
शङ्खचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विक्रीडतोः—दोनों जन क्रीड़ा करते हुए; स्वैरम्—इच्छानुसार; गायतोः—गाते हुए; सम्प्रमत्त—मतवाले; वत्—सदृश; शङ्खचूडः—शंखचूड़; इति—इस प्रकार; ख्यातः—नामक; धन-द—देवताओं के खजाञ्ची, कुवेर का; अनुचरः—सेवक; अभ्यगात्—आया।

जब भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बलराम स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ा कर रहे थे और गाते हुए

मतवाले हो रहे थे तभी कुवेर का शंखचूड़ नामक एक दास वहाँ आया।

तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम् ।
क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशङ्कितः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तयोः—दोनों के; निरीक्षतोः—देखते देखते; राजन्—हे राजन्; तत्-नाथम्—अपने प्रभुओं के; प्रमदा-जनम्—स्त्रियों के समूह को; क्रोशन्तम्—चिल्लाते हुए; कालयाम् आस—भगाने लगा; दिशि—दिशा में; उदीच्याम्—उत्तरी; अशङ्कितः—निर्भीक।

हे राजन्, दोनों के देखते देखते शंखचूड़ उन स्त्रियों को उत्तर दिशा की ओर भागकर ले जाने लगा। कृष्ण तथा बलराम को अपना स्वामी मान चुकीं स्त्रियाँ उनकी ओर देखते हुए चीखने- चिल्लाने लगीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार असुर शंखचूड़ सुन्दरी तरुणियों की ओर लट्ठ तानने लगा और इस तरह उन्हें डराकर वह उन्हें उत्तर की ओर भगाने लगा। उसने उनका स्पर्श नहीं किया, जैसाकि अगले श्लोक से प्रकट है।

क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम् ।
यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

क्रोशन्तम्—चिल्लाते हुए; कृष्ण राम इति—हे कृष्ण, हे राम; विलोक्य—देखकर; स्व-परिग्रहम्—अपने भक्तों को; यथा—जिस तरह; गाः—गौवें; दस्युना—चोरों के द्वारा; ग्रस्ताः—पकड़ी हुई; भ्रातरौ—दोनों भाई; अन्वधावताम्—पीछे दौड़ा।

अपने भक्तों को ''कृष्ण, राम,'' कहकर चिल्लाते हुए सुनकर तथा यह देखकर कि वे चोर द्वारा गौवों की तरह चुराई जा रही हैं कृष्ण तथा बलराम उस असुर के पीछे दौड़ने लगे।

मा भैष्टेत्यभयारावौ शालहस्तौ तरस्विनौ ।
आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

मा भैष्ट—मत डरो; इति—इस प्रकार पुकारते हुए; अभय—अभय दान करते हुए; आरावौ—जिसके शब्द; शाल—लट्ठे; हस्तौ—दोनों हाथों में; तरस्विनौ—तेजी से घुमाते हुए; आसेदतुः—वे पास पहुँचे; तम्—उस असुर को; तरसा—जल्दी से; त्वरितम्—तेजी से घूम रहे; गुह्यक—यक्षों में; अधमम्—निकृष्ट।

भगवान् ने उत्तर में पुकाराः ''डरना मत।'' तत्पश्चात् उन्होंने हाथ में शाल वृक्ष के लट्ठे उठा लिये और उस अधमतम गुह्यक का तेजी से पीछा करने लगे जो तेजी से भाग रहा था।

स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ।
विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, शंखचूड़; वीक्ष्य—देखकर; तौ—दोनों को; अनुप्राप्तौ—निकट आया; काल-मृत्यू—समय तथा मृत्यु; इव—सदृश; उद्विजन्—उद्विग्न होकर; विसृज्य—एक ओर छोड़कर; स्त्री-जनम्—स्त्रियों को; मूढः—मतिभ्रष्ट; प्राद्रवत्—भाग गया; जीवित—अपना जीवन; इच्छया—बनाये रखने की इच्छा से।

जब शंखचूड़ ने उन दोनों को साक्षात् काल तथा मृत्यु की तरह अपनी ओर आते देखा तो वह उद्विग्न हो उठा। वह भ्रमित होकर स्त्रियों को छोड़कर अपनी जान बचाकर भाग गया।

तमन्वधावद्गोविन्दो यत्र यत्र स धावति ।
जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन्स्त्रियो बलः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तम्—उसके; अन्वधावत्—पीछे पीछे दौड़े; गोविन्दः—कृष्ण; यत्र यत्र—जहाँ जहाँ; सः—वह; धावति—दौड़ता था; जिहीर्षुः—निकालने की इच्छा से; तत्—उसके; शिरः—सिर पर; रत्नम्—रत्न, मणि को; तस्थौ—खड़े रहे; रक्षन्—रक्षा करते हुए; स्त्रियः—स्त्रियाँ; बलः—बलराम।

भगवान् गोविन्द उस असुर के सिर की मणि निकालने के लिए उत्सुक होकर जहाँ जहाँ वह दौड़ रहा था, उसका पीछा कर रहे थे। इसी बीच बलराम स्त्रियों की रक्षा करने के लिए उनके साथ रह गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि भगाये जाने के कारण स्त्रियाँ थक गई थीं अतः जब वे विश्राम करने लगीं तो भगवान् बलराम उनकी रक्षा करने लगे और उन्हें ढाढस बँधाने लगे। इस बीच भगवान् कृष्ण उस असुर का पीछा करते रहे।

अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः ।
जहार मुष्टिनैवाङ्ग सहचूडमणिं विभुः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

अविदूरे—पास ही; इव—मानो; अभ्येत्य—की ओर आकर; शिरः—सिर; तस्य—उसका; दुरात्मनः—दुष्ट; जहार—अलग कर लिया; मुष्टिना—अपनी मुट्ठी से; एव—केवल; अङ्ग—हे राजन्; सह—साथ; चूड-मणिम्—सिर के मणि को; विभुः—सर्वशक्तिमान भगवान् ने।

हे राजन्, शक्तिशाली भगवान् ने दूर से ही शंखचूड़ को पकड़ लिया मानो निकट से हो और तब अपनी मुट्ठी से उस दुष्ट के सिर को चूड़ामणि समेत धड़ से अलग कर दिया।

शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ।

अग्रजायाददात्प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

शङ्खचूडम्—शंखचूड़ को; निहत्य—मारकर; एवम्—इस तरह; मणिम्—मणि को; आदाय—लाकर; भास्वरम्—चमकीली; अग्र-जाय—अपने बड़े भाई (बलराम) को; अददात्—दे दिया; प्रीत्या—प्रसन्नतापूर्वक; पश्यन्तीनाम्—देखते हुए; च—तथा; योषिताम्—स्त्रियों के।

इस प्रकार शंखचूड़ असुर को मारकर तथा उसकी चमकीली मणि लेकर भगवान् कृष्ण ने इसे अपने बड़े भाई को बड़ी प्रसन्नतापूर्वक गोपियों के सामने भेंट किया।

तात्पर्य : विभिन्न गोपियों ने शायद सोचा था कि गोविन्द उनमें से किसी एक को वह बहुमूल्य मणि देंगे किन्तु उनके बीच होड़ रोकने के लिए श्रीकृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक अपने बड़े भाई बलराम को वह मणि दे दी।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''नन्द महाराज की रक्षा तथा शंखचूड़ का वध'' नामक चौंतीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।